Title-गणराज्य

(B.A. First Year, Second Semestar)

Dr. Rajesh Kumar Tripathi
Assistant Professor
Ancient Indian History & Archaeology

एक **गणराज्य** या **गणतंत्र** (लातिन : *रेस पब्लिका*) सरकार का एक रूप है जिसमें देश को एक "सार्वजनिक मामला" माना जाता है, न कि शासकों की निजी संस्था या सम्पत्ति। एक गणराज्य के भीतर सत्ता के प्राथमिक पद विरासत में नहीं मिलते हैं। यह सरकार का एक रूप है जिसके अंतर्गत राज्य का प्रमुख राजा नहीं होता। गणराज्य की परिभाषा का विशेष रूप से सन्दर्भ सरकार के एक ऐसे रूप से है जिसमें व्यक्ति नागरिक निकाय का प्रतिनिधित्व करते हैं और किसी संविधान के तहत विधि के नियम के अनुसार शक्ति का प्रयोग करते हैं, और जिसमें निर्वाचित राज्य के प्रमुख के साथ शक्तियों का पृथक्करण शामिल होता हैं, व जिस राज्य का सन्दर्भ संवैधानिक गणराज्य या प्रतिनिधि लोकतंत्र से हैं। 2017 तक, दुनिया के 206 सम्प्रभु राज्यों में से 159 अपने आधिकारिक नाम के हिस्से में "रिपब्लिक" शब्द का उपयोग करते हैं - निर्वाचित सरकारों के अर्थ से ये सभी गणराज्य नहीं हैं, ना ही निर्वाचित सरकार वाले सभी राष्ट्रों के नामों में "गणराज्य" शब्द का उपयोग किया गया हैं। भले राज्यप्रमुख अक्सर यह दावा करते हैं कि वे "शासितों की सहमति" से ही शासन करते हैं, नागरिकों को अपने स्वयं के नेताओं को चुनने की वास्तविक क्षमता को उपलब्ध कराने के असली उद्देश्य के बदले कुछ देशों में चुनाव "शो" के उद्देश्य से अधिक पाया गया है। गणराज्य (संस्कृत से; "गण": जनता, "राज्य": रियासत/देश) एक ऐसा देश होता है जहां के शासनतन्त्र में सैद्धान्तिक रूप से देश का सर्वोच्च पद पर आम जनता में से कोई भी व्यक्ति पदासीन हो सकता है। इस तरह के शासनतन्त्र को **गणतन्त्र**(संस्कृत; गण:पूरी जनता, तंत्र:प्रणाली; *जनता द्वारा नियंत्रित प्रणाली*) कहा जाता है। "लोकतंत्र" या "प्रजातंत्र" इससे अलग होता है। **लोकतन्त्र** वो शासनतन्त्र होता है जहाँ वास्तव में सामान्य जनता या उसके बहुमत की इच्छा से शासन चलता है। आज विश्व के अधिकान्श देश गणराज्य हैं और इसके साथ-साथ लोकतान्त्रिक भी। भारत स्वयः एक लोकतान्त्रिक गणराज्य है।

भारतीय गणशासन

प्राचीन काल में दो प्रकार के राज्य कहे गए हैं। एक राजाधीन और दूसरे गणधीन। राजाधीन को एकाधीन भी कहते थे। जहाँ गण या अनेक व्यक्तियों का शासन होता था, वे ही गणाधीन राज्य कहलाते थे। इस विशेष अर्थ में पाणिनि की व्याख्या स्पष्ट और सुनिश्चित है। उन्होंने गण को संघ का पर्याय कहा है (संघोद्धौ गणप्रशंसयो :, अष्टाध्यायी 3,3,86)। साहित्य से ज्ञात होता है कि पाणिनि और बुद्ध के काल में अनेक गणराज्य थे। तिरहुत से लेकर कपिलवस्तु तक गणराज्यों का एक छोटा सा गुच्छा गंगा से तराई तक फैला हुआ था। बुद्ध शाक्यगण में उत्पन्न हुए थे। लिच्छवियों का गणराज्य इनमें सबसे शक्तिशाली था, उसकी राजधानी वैशाली थी। किंतु भारतवर्ष में गणराज्यों का सबसे अधिक विस्तार वाहीक (आधुनिक पंजाब) प्रदेश में हुआ था। उत्तर पश्चिम के इन गणराज्यों को पाणिनि ने आयुधजीवी संघ कहा है। वे ही अर्थशास्त्र के वार्ताशस्त्रोपजीवी संघ ज्ञात होते हैं। ये लोग शांतिकल में वार्ता या कृषि आदि पर निर्भर रहते थे किंतु युद्धकाल में अपने संविधान के अनुसार योद्धा बनकर संग्राम करते थे। इनका राजनीतिक संघटन बहुत दृढ़ था और ये अपेक्षाकृत विकसित थे। इनमें क्षुद्रक और मालव दो गणराज्यों का विशेष उल्लेख आता है। उन्होंने यवन आक्रांता सिकंदर से घोर युद्ध किया था। वह मालवों के बाण से तो घायल भी हो गया था। इन दोनों की संयुक्त सेना के लिये पाणिनि ने गणपाठ में क्षौद्रकमालवी संज्ञा का उल्लेख किया है। पंजाब के उत्तरपश्चिम और उत्तरपूर्व में भी अनेक छोटे मोटे गणराज्य थे, उनका एक श्रृंखला त्रिगर्त (वर्तमान काँगड़ा) के पहाड़ी प्रदेश में विस्तारित हुआ था जिन्हें पर्वतीय संघ कहते थे। दूसरा श्रृंखला सिंधु नदी के दोनों तटों पर गिरिगहवरों में बसने वाले महाबलशाली जातियों का था जिन्हें प्राचीनकाल में ग्रामणीय संघ कहते थे। वे ही वर्तमान के कबायली हैं। इनके संविधान का उतना अधिक विकास नहीं हुआ जितना अन्य गणराज्यों का। वे प्राय: उत्सेधजीवी या लूटमार कर जीविका चलानेवाले थे। इनमें भी जो कुछ विकसित थे उन्हें पूग और जो पिछड़े हुए थे उन्हें ब्रात कहा जाता था। संघ या गणों का एक तीसरा गुच्छा सौराष्ट्र में विस्तारित हुआ था। उनमें अंधकवृष्णियों का संघ या गणराज्य बहुत प्रसिद्ध था। कृष्ण इसी संघ के सदस्य थे अतएव शांतिपूर्व में उन्हें अर्धभोक्ता राजन्य कहा गया है। ज्ञात होता है कि सिंधु नदी के दोनों तटों पर गणराज्यों की यह श्रृंखला ऊपर से नीचे को उतरती सौराष्ट्र तक फैल गई थी क्योंकि सिंध नामक प्रदेश में भी इस प्रकर के कई गणों का वर्णन मिलता है। इनमें मुचकर्ण, ब्राह्मणक और शूद्रक मुख्य थे।

भारतीय गणशासन के संबंध में भी पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। गण के निर्माण की इकाई कुल थी। प्रत्येक कुल का एक एक व्यक्ति गणसभा का सदस्य होता था। उसे कुलवृद्ध या पाणिनि के अनुसार गोत्र कहते थे। उसी की संज्ञा वंश्य भी थी। प्राय: ये राजन्य या क्षत्रिय जाति के ही व्यक्ति होते थे। ऐसे कुलों की संख्या प्रत्येक गण में परंपरा से नियत थी, जैसे लिच्छविगण के संगठन में 7707 कुटुंब या कुल सम्मिलित थे। उनके प्रत्येक कुलवृद्ध की संघीय उपाधि राजा होती थी। सभापर्व में गणाधीन और राजाधीन शासन का विवेचन करते हुए स्पष्ट कहा है कि साम्राज्य शासन में सत्ता एक व्यक्ति के हाथ में रहती है। (साम्राज्यशब्दों हि कृत्स्नभाक्) किंतु गण शासन में प्रत्येक परिवार में एक एक राजा होता है। (गृहे गृहेहि राजान: स्वस्य स्वस्य प्रियंकरा:, सभापर्व, 14,2)। इसके अतिरिक्त दो बातें और कही गई हैं। एक यह कि गणशासन में प्रजा का कल्याण दूर दूर तक व्याप्त होता है। दूसरे यह कि युद्ध से गण की स्थिति सकुशल नहीं रहती। गणों के लिए शम या शांति की नीति ही थी। यह भी कहा है कि गण में परानुभाव या दूसरे की व्यक्तित्व गरिमा की भी प्रशंसा होती है और गण में सबको साथ लेकर चलनेवाला ही

प्रशंसनीय होता है। गण शासन के लिए ही परामेष्ठ्य यह पारिभाषिक संज्ञा भी प्रयुक्त होती थी। संभवत: यह आवश्यक माना जाता था कि गण के भीतर दलों का संगठन हो। दल के सदस्यों को वग्र्य, पक्ष्य, गृह्य भी कहते थे। दल का नेता परमवग्र्य कहा जाता था।

गणसभा में गण के समस्त प्रतिनिधियों को सम्मिलित होने का अधिकार था किंतु सदस्यों की संख्या कई सहस्र तक होती थी अतएव विशेष अवसरों को छोड़कर प्राय: उपस्थिति परिमित ही रहती थी। शासन के लिये अंतरंग अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। किंतु नियमनिर्माण का पूरा दायित्व गणसभा पर ही था। गणसभा में नियमानुसार प्रस्ताव (ज्ञप्ति) रखा जाता था। उसकी तीन वाचना होती थी और शलाकाओं द्वारा मतदान किया जाता था। इस सभा में राजनीतिक प्रश्नों के अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के सामाजिक, व्यावहारिक और धार्मिक प्रश्न भी विचारार्थ आते रहते थे। उस समय की राज्य सभाओं की प्राय: ऐसे ही लचीली पद्धति थी।

भारतवर्ष में लगभग एक सहस्र वर्षों (600 सदी ई. पू. से 4 थी सदी ई.) तक गणराज्यों के उतार चढ़ाव का इतिहास मिलता है। उनकी अंतिम झलक गुप्त साम्राज्य के उदय काल तक दिखाई पड़ती है। समुद्रगुप्त द्वारा धरणिबंध के उद्देश्य से किए हुए सैनिक अभियान से गणराज्यों का विलय हो गया। अर्वाचीन पुरातत्व के उत्खनन में गणराज्यों के कुछ लेख, सिक्के और मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुई हैं। विशेषत: विजयशाली यौधेय गणराज्य के संबंध की कुछ प्रमाणिक सामग्री मिली है। (वा. श्. अ.)

भारतीय इतिहास के वैदिक युग में जनों अथवा गणों की प्रतिनिधि संस्थाएँ थीं विदथ, सभा और समिति। आगे उन्हीं का स्वरूपवर्ग, श्रेणी पूग और जानपद आदि में बदल गया। गणतंत्रात्मक और राजतंत्रात्मक परंपराओं का संघर्ष जारी रहा। गणराज्य नृपराज्य और नृपराज्य गणराज्य में बदलते रहे। ऐतरेय ब्राह्मण के उत्तरकुल और उत्तरमद्र नामक वे राज्य----जो हिमालय के पार चले गए थे-----पंजाब में कुरु और मद्र नामक राजतंत्रवादियों के रूप में रहते थे। बाद में ये ही मद्र और कुरु तथा उन्हीं की तरह शिवि, पांचाल, मल्ल और विदेह गणतंत्रात्मक हो गए।

महाभारत युग में अंधकवृष्णियों का संघ गणतंत्रात्मक था। साम्राज्यों की प्रतिद्वंद्विता में भाग लेने में समर्थ उसके प्रधान कृष्ण महाभारत की राजनीति को मोड़ देने लगे। पाणिनि (ईसा पूर्व पाँचवीं-सातवीं सदी) के समय सारा वाहीक देश (पंजाब और सिंध) गणराज्यों से भरा था। महावीर और बुद्ध ने न केवल ज्ञात्रिकों और शाक्यों को अमर कर दिया वरन् भारतीय इतिहास की काया पलट दी। उनके समय में उत्तर पूर्वी भारत गणराज्यों का प्रधान क्षेत्र था और लिच्छवि, विदेह, शाक्य, मल्ल, कोलिय, मोरिय, बुली और भग्ग उनके मुख्य प्रतिनिधि थे। लिच्छवि अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा से मगध के उदीयमान राज्य के शूल बने। पर वे अपनी रक्षा में पीछे न रहे और कभी तो मल्लों के साथ तथा कभी आस पास के अन्यान्य गणों के साथ उन्होंने संघ बनाया जो बज्जिसंघ के नाम से विख्यात हुआ। अजातशत्रु ने अपने मंत्री वर्षकार को भेजकर उन्हें जीतने का उपाय बुद्ध से जानना चाहा। मंत्री को, बुद्ध ने आनंद को संबोधित कर अप्रत्यक्ष उत्तर दिया-----आनंद! जब तक वज्जियों के अधिवेशन एक पर एक और सदस्यों की प्रचुर उपस्थिति में होते हैं; जब तक वे अधिवेशनों में एक मन से बैठते, एक मन से उठते और एक मन से संघकार्य संपन्न करते हैं; जब तक वे पूर्वप्रतिष्ठित व्यवस्था के विरोध में नियमनिर्माण नहीं करते, पूर्वनियमित नियमों के विरोध में नवनियमों की अभिसृष्टि नहीं करते और जब तक वे अतीत काल में प्रस्थापित वज्जियों की संस्थाओं और उनके सिद्धांतों के अनुसार कार्य करते हैं; जब तक वे वज्जि अर्हतों और गुरु जनों का संमान करते हैं, उनकी मंत्रणा को भक्तिपूर्वक सुनते हैं; जब तक उनकी नारियाँ और कन्याएँ शक्ति और अपचार से व्यवस्था विरुद्ध व्यसन का साधन नहीं बनाई जातीं, जब तक वे वज्जिचैत्यों के प्रति श्रद्धा और भक्ति रखते हैं, जब तक वे अपने अर्हतों की रक्षा करते हैं, उस समय तक हे आनंद, वज्जियों का उत्कर्ष निश्चित है, अपकर्ष संभव नहीं। गणों अथवा संघों के ही आदर्श पर स्थापित अपने बौद्ध संघ के लिए भी बुद्ध ने इसी प्रकार के नियम बनाए। जब तक गणराज्यों ने उन नियमों का पालन किया, वे बने रहे, पर धीरे धीरे उन्होंने भी राज की उपाधि अपनानी शरू कर दी और उनकी आपसी फूट, किसी की ज्येष्ठता, मध्यता तथा शिष्यत्व न स्वीकार करना, उनके दोष हो गए। संघ आपस में ही लड़ने लगे और राजतंत्रवादयों की बन आई। तथापि गणतंत्रों की परंपरा का अभी नाश नहीं हुआ। पंजाब और सिंध से लेकर पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार तक के सारे प्रदेश में उनकी स्थिति बनी रही। चौथी सदी ईसवी पूर्व में मक्द्रूनियाँ के साम्राज्यवादी आक्रमणकार सिकंदर को, अपने विजय में एक एक इंच जमीन के लिए केवल लड़ना ही नहीं पड़ा, कभी कभी छद्म और विश्वासघात का भी आश्रय लेना पड़ा। पंजाबी गणों की वीरता, सैन्यकुशलता, राज्यभक्ति, देशप्रेम तथा आत्माहुति के उत्साह का वर्णन करने में यूनानी इतिहासकार भी न चूके। अपने देश के गणराज्यों से उनकी तुलना और उनके शासनतंत्रों के भेदोपभेद उन्होंने समझ बुझकर किए। कठ, अस्सक, यौधेय, मालव, क्षुद्रक, अग्रश्रेणी क्षत्रिय, सौभूति, मुचुकर्ण और अंबष्ठ आदि अनेक गणों के नरनारियों ने सिकंदर के दाँत खट्टे कर दिए और मातृभूमि की रक्षा में अपने लहू से पृथ्वी लाल कर दी। कठों और सौभूतियों का सौंदयप्रेम अतिवादी था और स्वस्थ तथा सुदंर बच्चे ही जीने दिए जाते थे। बालक राज्य का होता, माता पिता का नहीं। सभी नागरिक सिपाही होते और अनेकानेक गणराज्य आयुधजीवी। पर सब व्यर्थ था, उनकी अकेलेपन की नीति के कारण। उनमें मतैक्य का अभाव और उनके छोटे छोटे प्रदेश उनके विनाश के कारण बने। सिकंदर ने तो उन्हें जीता ही, उन्हीं गणराज्यों में से एक के (मोरियों के) प्रतिनिधि चंद्रगुप्त तथा उसके मंत्री चाणक्य ने उनके उन्मूलन की नीति अपनाई। परंतु साम्राज्यवाद की धारा में समाहित हो जाने की बारी केवल उन्हीं गणराज्यों की थी जो छोटे और कमजोर थे। कुलसंघ तो चंद्रगुप्त और चाणक्य को भी दुर्जय जान पड़े। यह गणराज्यों के संघात्मक स्वरूप की विजय थी। परंतु ये संघ अपवाद मात्र थे। अजातशत्रु और वर्षकार ने जो नीति अपनाई थी, वहीं चंद्रगुप्त और चाणक्य का आदर्श बनी। साम्राज्यवादी शक्तियों का सर्वात्मसाती स्वरूप सामने आया और अधिकांश गणतंत्र मौर्यों के विशाल एकात्मक शासन में विलीन हो गए।

परंतु गणराज्यों की आत्मा नहीं दबी। सिकंदर की तलवार, मौर्यों की मार अथवा बाख़्त्री यवनों और शक कुषाणों की आक्रमणकारी बाढ़ उनमें से कमजोरों ही बहा सकी। अपनी स्वतंत्रता का हर मूल्य चुकाने को तैयार मल्लोई (मालवा), यौधेय, मद्र और शिवि पंजाब से नीचे उतरकर राजपूताना में प्रवेश कर गए और शताब्दियों तक आगे भी उनके गणराज्य बने रहे। उन्होंने शाकल आदि अपने प्राचीन नगरों का मोह छोड़ माध्यमिका तथा उज्जयिनी जैसे नए नगर बसाए, अपने सिक्के चलाए और अपने गणों की विजयकामना की। मालव गणतंत्र के प्रमुख विक्रमादित्य ने शकों से मोर्चा लिया, उनपर विजय प्राप्त की, शकारि उपाधि धारण की और स्मृतिस्वरूप 57-56 ई0 पू0 में एक नया संवत् चलाया जो क्रमश:कृतमालव और विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ और जो आज भी भारतीय गणनापद्धति में मुख्य स्थान रखता है।

तथापि स्वातंत्र्यभावना की यह अंतिम लौ मात्र थी। गुप्तों के साम्राज्यवाद ने उन सबको समाप्त कर डाला। भारतीय गणों के सिरमौरों में से एक-लिच्छवियों-के ही दौहित्र समुद्रगुप्त ने उनका नामोनिशान मिटा दिया और मालव, आर्जुनायन, यौधेय, काक, खरपरिक, आभीर, प्रार्जुन एवं सनकानीक आदि को प्रणाम, आगमन और आज्ञाकरण के लिये बाध्य किया। उन्होंने स्वयं अपने को महाराज कहना शुरू कर दिया और विक्रमादित्य उपाधिधारी चंद्रगुप्त ने उन सबको अपने विशाल साम्राज्य का शासित प्रदेश बना लिया। भारतीय गणराज्यों के भाग्यचक्र की यह विडंबना ही थीं कि उन्हीं के संबंधियों ने उनपर सबसे बड़े प्रहार किए----वे थे वैदेहीपुत्र अजातशुत्र मौरिय राजकुमार चंद्रगुप्त मौर्य, लिच्छविदौहित्र समुद्रगुप्त। पर पंचायती भावनाएँ नहीं मरीं और अहीर तथा गूजर जैसी अनेक जातियों में वे कई शताब्दियों आगे तक पलती रहीं।

पश्चिम में गणराज्यों की परंपरा

प्राचीन भारत की भाँति ग्रीस की भी गणपरंपरा अत्यंत प्राचीन थीं। दोरियाई कबीलों ने ईजियन सागर के तट पर 12 वीं सदी ई. पू. में ही अपनी स्थिति बना ली। धीरे धीरे सारे ग्रीस में गणराज्यवादीं नगर खड़े हो गए। एथेंस, स्पार्ता, कोरिंथ आदि अनेक नगरराज्य दोरिया ग्रीक आवासों की कतार में खड़े हो गए। उन्होंने अपनी परंपराओं, संविधानों और आदर्शों का निर्माण किया, जनसत्तात्मक शासन के अनेक स्वरूप सामने आए। प्राप्तियों के उपलक्ष्यस्वरूप कीर्तिस्तंभ खड़े किए गए और ऐश्वर्यपूर्ण सभ्यताओं का निर्माण शुरू हो गया। परंतु उनकी गणव्यवस्थाओं में ही उनकी अवनति के बीज भी छिपे रहे। उनके ऐश्वर्य ने उनकी सभ्यता को भोगवादी बना दिया, स्पार्ता और एथेंस की लाग डाट और पारस्परिक संघर्ष प्रारंभ हो गए और वे आदर्श राज्य--रिपब्लिक--स्वयं साम्राज्यवादी होने लगे। उनमें तथाकथित स्वतंत्रता ही बच रही, राजनीतिक अधिकार अत्यंत सीमित लोगों के हाथों रहा, बहुल जनता को राजनीतिक अधिकार तो दूर, नागरिक अधिकार भी प्राप्त नहीं थे तथा सेवकों और गुलामों की व्यवस्था उन स्वतंत्र नगरराज्यों पर व्यंग्य सिद्ध होने लगी। स्वार्थ और आपसी फूट बढ़ने लगी। वे आपस में तो लड़े ही, ईरान और मकदूनियाँ के साम्राज्य भी उन पर टूट पड़े। सिकंदर के भारतीय गणराज्यों की कमर तोड़ने के पूर्व उसे पिता फिलिप ने ग्रीक गणराज्यों को समाप्त कर दिया था। साम्राज्यलिप्सा ने दोनों ही देशों के नगरराज्यों को डकार दिया।

परंतु पश्चिम में गणराज्यों की परंपरा समाप्त नहीं हुई। इटली का रोम नगर उनका केंद्र और आगे चलकर अत्यंत प्रसिद्ध होने वाली रोमन जाति का मूलस्थान बना। हानिबाल ने उसपर धावे किए और लगा कि रोम का गणराज्य चूर चूर हो जायगा पर उस असाधारण विजेता को भी जामा की लड़ाई हारकर अपनी रक्षा के लिये हटना पड़ा। रोम की विजयनी सेना ग्रीस से लेकर इंग्लैंड तक धावे मारने लगी। पर जैसा ग्रीस में हुआ, वैसा ही रोम में भी। सैनिक युद्धों में ग्रीस को जीतनेवाले रोमन लोग सभ्यता और संस्कृति की लड़ाई में हार गए और रोम में ग्रीस का भोगविलास पनपा। अभिजात कुलों के लाड़ले भ्रष्टाचार में डूबे, जनवादी पाहरू बने और उसे समूचा निगल गए---पांपेई, सीजर, अंतोनी सभी। भारतीय मलमल, मोती और मसालों की बारीकी, चमक और सुगंध में वे डूबने लगे और प्लिनी जैसे इतिहासकार की चीख के बावजूद रोम का सोना भारत के पश्चिमी बंदरगाहों से यहाँ आने लगा। रोम की गणराज्यवादी परंपरा सुख, सौंदर्य और वैभव की खोज में लुप्त हो गई और उनके श्मशान पर साम्राज्य ने महल खड़ा किया। अगस्तस उसका पहला सम्राट् बना और उसके वंशजों ने अपनी साम्राज्यवादी सभ्यता में सारे यूरोप को डुबो देने का उपक्रम किया। पर उसकी भी रीढ़ उन हूणों ने तोड़ दी, जिनकी एक शाखा ने भारत के शक्तिशाली गुप्त साम्राज्य को झकझोरकर धराशायी कर देने में अन्य पतनोन्मुख प्रवृत्तियों का साथ दिया।

तथापि नए उठते साम्राज्यों और सामंती शासन के बावजूद यूरोप में नगर गणतंत्रों का आभास चार्टरों और गिल्डों (श्रेणियों) आदि के जरिए फिर होने लगा। नगरों और सामंतों में, नगरों और सम्राटों में गजब की कशमकश हुई और सदियों बनी रही; पर अंतत: नगर विजयी हुए। उनके चार्टरों के सामंतों और सम्राटों को स्वीकार करना पड़ा।

मध्यकाल में इटली में गणराज्य उठ खड़े हुए, जिनमें प्रसिद्ध थे जेनोआ, फ्लोरेंस, पादुआ एवं वेनिस और उनके संरक्षक तथा नेता थे उनके ड्यूक। पर राष्ट्रीय नृपराज्यों के उदय के साथ वे भी समाप्त हो गए। नीदरलैंड्स के सात राज्यों ने स्पैनी साम्राज्य के विरु द्ध विद्रोह कर संयुक्त नीदरलैंड्स के गणराज्य की स्थापना की।

आगे भी गणतंत्रात्मक भावनाओं का उच्छेद नहीं हुआ। इंग्लैंड आनुवंशिक नृपराज्य था, तथापि मध्ययुग में वह कभी कभी अपने को कामनबील अथवा कामनवेल्थ नाम से पुकारता रहा। 18वीं सदी में वहाँ के नागरिकों ने अपने अधिकारों की रक्षा के लिये अपने राजा (चार्ल्स प्रथम) का वध कर डाला और कामनवेल्थ अथवा रिपब्लिक (गणतंत्र) की स्थापना हुई। पुन: राजतंत्र आया पर गणतंत्रात्मक भावनाएँ जारी रहीं, राजा जनता का कृपापात्र, खिलौना बन गया और कभी भी उसकी असीमित शक्ति स्थापित न हो सकी। मानव अधिकारी (राइट्स ऑव मैन) की लड़ाई जारी रही और अमरीका के अंग्रेजी उपनिवेशों ने इंग्लैंड के विरु द्ध युद्ध ठानकर विजय प्राप्त की और अपनी स्वतंत्रता की घोषणा में उन अधिकारों को समाविष्ट किया। फ्रांस की प्रजा भी आगे बढ़ी; एकता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के नारे लगे, राजतंत्र ढह गया और क्रांति के फलस्वरूप प्रजातंत्र की स्थापना हुई। नेपोलियन उन भावनाओं की बाढ़ पर तैरा, फ्रांस स्वयं तो पुन: कुछ दिनों के लिए निरंकुश राजतंत्र की चपेट में आ गया, किंतु यूरोप के अन्यान्य देशों और उसके बाहर भी स्वातंत्र्य भावनाओं का समुद्र उमड़ पड़ा। 19वीं सदी के मध्य से क्रांतियों का युग पुन: प्रारंभ हुआ और कोई भी देश उनसे अछूता न बचा। राजतंत्रों को समाप्त कर गणतंत्रों की स्थापना की जाने लगी। परंतु 19वीं तथा 20वीं सदियों में यूरोप के वे ही देश, जो अपनी सीमाओं के भीतर जनवादी होने का दम भरते रहे, बाहरी दुनियाँ में----एशिया और अफ्रीका में----साम्राज्यवाद का नग्न तांडव करने से न चूके। 1917 ई. में माक्र्सवाद से प्रभावित होकर रूस में राज्यक्रांति हुई और जारशाही मिटा दी गई। 1948 ई. में उसी परंपरा में चीन में भी कम्युनिस्ट सरकार का शासन शुरू हुआ। ये दोनों ही देश अपने को गणतंत्र की संज्ञा देते हैं और वहाँ के शासन जनता के नाम पर ही किए जाते हैं। परंतु उनमें जनवाद की डोरी खींचनेवाले हाथ अधिनायकवादी ही हैं। सदियों की गुलामी

को तोड़कर भारत भी आज गणराज्य की परंपरा को आगे बढ़ाने के लिय कटिबद्ध है और अपने लिए एक लोकतंत्रीय सांवैधानिक व्यवस्था का सृजन कर चुका है।

साम्राज्यों और सम्राटों के नामोनिशान मिट चुके हैं तथा निरकुंश और असीमित राज्यव्यवस्थाएँ समाप्त हो चुकी हैं, किंतु स्वतंत्रता की वह मूल भावना मानवहृदय से नहीं दूर की जा सकती जो गणराज्य परंपरा की कुंजी है। विश्व इतिहास के प्राचीन युग के गणों की तरह आज के गणराज्य अब न तो क्षेत्र में अत्यंत छोटे हैं और न आपस में फूट और द्वेषभावना से ग्रस्त। उनमें न तो प्राचीन ग्रीस का दासवाद है और न प्राचीन और मध्यकालीन भारत और यूरोप के गणराज्यों का सीमित मतदान। उनमें अब समस्त जनता का प्राधान्य हो गया है और उसके भाग्य की वही विधायिका है। सैनिक अधिनायकवादी भी विवश होकर जनवाद का दम भरते और कभी कभी उसके लिये कार्य भी करते हैं। गणराज्य की भावना अमर है और उसका जनवाद भी सर्वदा अमर रहेगा।